तीय अध्याय

मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या

तृतीय अध्याय

मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या

मुद्राराक्षस प्रसिद्ध साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक और रंगमंच के साथ-साथ कहानी के विकास में भी अग्रणी भूमिका निभाई है। इनका संबंध साठोत्तरी कहानीकारों से है। साठोत्तरी कहानी को कहीं अकहानी भी कहा जाता है। साठोत्तरी कहानी के दो अर्थ हैं। सामान्य अर्थ में 1960 के बाद की सारी कहानी इसमें शामिल होती है। किन्तु, अब 'साठोत्तरी' को विशेषण नहीं बल्कि संज्ञा का अंश मान लिया गया है अर्थात् यह काल सूचक नाम नहीं है। मुद्राराक्षस अपने साहित्य में अपने ढंग से जूझते या संघर्ष करते दिखाई देते हैं। मुद्राराक्षस को जनवादी साहित्यकार भी कहा जाता है।

जनवादी आंदोलन 1967 के आसपास की विशेष परिस्थितियों का परिणाम है। इस दौर में आजादी से मोहभंग की शुरूआत हो चुकी थी क्योंकि देश की तथाकथित आजादी व्यक्ति के स्तर पर रूपांतरित नहीं हुई थी। इन्जीनियर असगर अली लिखते हैं, "भारत में आज लोग राजनैतिक निर्णय व्यक्तिगत तौर पर नहीं लेते। हर व्यक्ति अपनी जाति और समुदाय के सदस्य के रूप में राजनैतिक निर्णय लेता है। यह निर्णय सामूहिक होता है और सम्बन्धित जाति या समुदाय के हितों के संदर्भ में लिया जाता है। पश्चिम में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ये बाधाएँ बहुत समय पहले दूर हो गयी थी।"[1] प्रगतिवादी लोग इस कागज़ी आजादी की निरर्थकता लगातार बता रहे थे। सातवें दशक (1960-70) में स्थितियाँ और तेजी से बिगड़ी। 1962 में चीन से युद्ध हुआ जिसमें भारत की पराजय हुई। 1965 में पाकिस्तान से फिर युद्ध हुआ। इन युद्धों ने देश की कमर तोड़ दी। 1967 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी जीत तो गई किंतु जीत का

अंतर बेहद मामूली रहा। केरल तथा पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी सरकारें बनी जिससे जनवाद की सुगबुगाहट पैदा होने लगी। इसी समय नक्सलवाद का तीव्र उभार हुआ। जिससे जनक्रांति के प्रति आस्था गहराने लगी। इस समय जयप्रकाश नारायण भी देश में बड़े परिवर्तन के लिए आह्वान कर रहे थे।

जनवादी आंदोलन में दो चरण दिखाई पड़ते हैं। पहला चरण 1965-75 तक का है, जबकि दूसरा 1975 के बाद का जो किसी न किसी रूप में अभी तक चल रहा है। पहले चरण में जोश व उमंग की अत्यधिक मात्रा दिखती है क्योंकि इस समय सामाजिक परिवर्तन की संभावना के प्रति गहरा विश्वास विद्यमान था। 1975 में अचानक आपातकाल की घोषणा हुई। इससे क्रांति का सपना तो टूटा ही, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना भी कठिन हो गया। इसके बाद जातिवाद व सांप्रदायिकता का तीव्र उभार हुआ तथा जनवादी क्रांति की सारी उम्मीदें धराशायी हो गई।

जनवाद के समय तक चीन की जनवादी क्रांति सम्पन्न हो चुकी थी। चीन भौगोलिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से भारतीय परिस्थितियों के अधिक निकट था। वहाँ की क्रांति में कृषकों की केंद्रीय भूमिका रही थी तथा जनवादी शासन में भी एक वर्ग की तानाशाही के स्थान पर कृषक, मजदूर तथा बुर्जुआ वर्गों की सम्मिलित व्यवस्था को अपनाया गया था। भारत के समाजवादी विचारक जैसे आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया भी कृषिमूलक समाजवाद की स्थापना पर बल दे रहे थे जो जनवाद के अधिक अनुकूल था। यह उल्लेखनीय है कि मुद्राराक्षस ने अपने साहित्य का निर्माण इस सामाजिक परिवेश से जुड़कर किया। समाज का यथार्थ उनकी कहानियों मे स्पष्ट दिखता है।

दस से ज्यादा नाटकों, दर्जन भर उपन्यासों के अलावा व्यंग्य के तीन और पाँच कहानियों के संग्रह दिए। मुद्राराक्षस साठोत्तरी कहानीकारों में आते हैं। इन्होंने शोषण पर

आधारित सामाजिक संरचना को बदलकर एक शोषणमुक्त समाज के निर्माण में दिलचस्पी दिखाई है। दूधनाथ सिंह कहते हैं "मुद्राराक्षस ने अपनी लेखकीय जिंदगी कलकत्ता में ही शुरू की थी। हमेशा से वह तेज और तुर्श लेखन के प्रति ईमानदार थे। उनकी कहानियां इसी का सबूत पेश करती हैं।"[3] स्थापित संस्कृति का अपने आप से संघर्ष उनकी कहानियों में जब-तब होता रहता है। इनकी कहानियों का उद्देश्य सृष्टि के अनंत रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए मनुष्य की चेतना का परिष्कार करना है, जिससे वह मानव सभ्यता के विकास में सहयोग देती हुई इस अनंत प्रसार के साथ एकता का अनुभव कर सके। 1955 से लेकर 1960 तक का दौर अलग था और 1967 में देश के राजनैतिक उथल-पुथल मच गई। मुद्राराक्षस ने लिखा, "1967 में देश में खासी बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल शुरू हुई। इस राजनीतिक हलचल के बीच मेरे कथा लेखन का वह दौर शुरू हुआ, जिसे मैं रचना में राजनीतिक सक्रियता कह सकता हूँ। यहाँ से ऐसी कहानियाँ लिखनी शुरू की, जो मेरे जुलूस, हड़ताल, धरना, प्रदर्शन का ही एक दूसरा रूप थी।"[3] मेरा विषय इनकी कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या देखना है। सांप्रदायिकता का संबंध केवल धर्म या राजनीति से नहीं है। समाज के ठेकेदार और धर्मांध लोग अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए किस हद तक जा सकते हैं इसका उल्लेख इनकी कहानियां जले मकान के कैदी, दिव्य दाह, पैशाचिक, एक बंदर की मौत, एहसास और युद्ध करती हैं।

भूमंडलीकृत समाज का एक अंतर्विरोध यह है कि वह एक समय में वैश्विक होने के साथ-साथ स्थानीय है। किसी भी युग में किसी राष्ट्र की समस्याएँ किसी एक कौम या जाति की समस्याएँ नहीं हैं। राष्ट्र की समस्या उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की समस्या होती है। राष्ट्र के सामने जो समस्या है, उसका संबंध हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी से है। बेकारी से सभी दुःखी है। दरिद्रता, बीमारी, अशिक्षा, बेकारी हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई का विचार नहीं करती। वैश्विक और स्थानीय एक होने के कारण धार्मिक विद्वेष, जातीय विद्वेष से ऊपर उठ नहीं पाता। राजनेता और कट्टरवादी ताकतें अपना अस्तित्व और साम्राज्य कायम रखने के लिए इन

विद्वेषों में आहुति देती रहती हैं। जिससे समाज या देश धार्मिक-जातीय विद्वेषों में जलता, कराहता रहता है। मुद्राराक्षस की कहानी 'दिव्य-दाह' धर्म के नाम पर होनी वाली हिंसा, हत्या और लूट-खसोट को दर्शाती है। गांधी जी ने लिखा है, "हर व्यक्ति की धर्म की अपनी-अपनी धारणा होती है, इस तथ्य पर ध्यान देते हुए, उन्होंने यहाँ तक कहा कि हिन्दू-मुसलमान यदि शास्त्रियों और मुल्लाओं को बीच में न आने दे तो उनके बीच झगड़े का मुंह हमेशा काला ही रहेगा।"[4] 'दिव्यदाह' कहानी एक साथ दो घटनाओं को लेकर चलती है। पहली ब्राह्मणवादी ताकतों का धर्म के नाम पर शूद्रों के साथ जुल्म करना दूसरा हिन्दू-ईसाई दंगों को दिखाती है। 'दिव्यदाह' के फादर जानवरों से बदतर जिंदगी जीने वाले लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, जागरूक बनाना जैसी सुविधा मुहैया कराना चाहते हैं। लेकिन सांप्रदायिक या फासिस्ट ताकतें यह कैसे बर्दाशत कर सकती हैं कि राष्ट्र उन्नति की ओर बढ़े। वर्ग विभेद के विषय में मुद्राजी लिखते हैं, "महात्मा गांधी के दबाव में आकर पूना पैक्ट करना बाबा साहब की ऐतिहासिक भूल थी। वे यह गलती नहीं करते तो आज देश में खुद को हिंदू कहने वालों की संख्या आठ प्रतिशत ही होती और दलित, पिछड़े व आदिवासी स्वायत समुदाय होते, तब न हिंदू बहुसंख्यक होने का दावा कर पाते, न बाबरी मस्जिद ध्वस्त होती और न ही गुजरात में कत्ल-ए-आम हो पाता। अल्पसंख्यकों के प्रति घृणा और सांप्रदायिकता का हौव्वा खड़ा कर दलित समस्याओं की अनदेखी भी तब संभव नहीं होती।"[5] जिन गांधी जी ने आमरण अनशन करके दलित व पिछड़ों को बहुसंख्यक बनाने का पक्का इंतजाम किया था आज उन्हीं हिन्दुओं के साथ हिन्दुओं का दूसरा वर्ग धर्म के नाम पर दलितों को भीगे हुए कपड़ो सहित तेज तपते हुए लोहे के तवे पर बैठाया जाता है। याज्ञिक कहता है "शर्मा जी, किसी से एक बड़ी अंगीठी मंगाकर पीछे मंदिर के बगीचे में सुबह से ही सुलगवा दीजिएगा। उसके ऊपर गर्म करने के लिए एक बड़ा तवा भी चाहिए। शोध्य को उस पर बीस पल के लिए बैठाया जाएगा। इसके बाद दोनों हथेलियां रखी जाएगी और तवे पर जिह्वा से पांच बार स्पर्श करना होगा। अगर वह शोध्य जलता नहीं है तो

वह पवित्र है। उसने चोरी नहीं की है।''[6] समाज के इन ठेकेदारों से यह जानना चाहिए कि ब्राह्मण को तो सबसे पवित्र माना गया है अगर ऐसे जलते तवे पर पल भर के लिए वह बैठ जाये तो उसके पवित्र होने या ना होने का प्रमाण मिल जायेगा। दिव्य दाह का कथानक उच्च वर्ग के अत्याचार के साथ शूद्रों की बदतर जीवन शैली व धर्म के नाम पर अत्याचार, हिंसा और दंगों को दिखाता है।

नाले के किनारे कूड़े और मैल की तरह चिपकी बस्ती में झोपड़ी बना के जीवनयापन करने वाली नोखे कबाड़ी की विधवा रहती थी। नोखे का रद्दी का उद्योग ऐसा था, जिसमें उसकी बीवी भी हिस्सा बंटाती और बच्चे भी। एक दिन उसका एक लड़का जानकी वल्लभ के घर रद्दी लेने गया तो उस समय उसकी बहू का सोने का हार गुम हो जाता है जिसका आरोप नोखे के लड़के पर लगता है। लड़के ने उस हार को नहीं चुराया होता है। पर वो लोग बार-बार उसी लड़के पर हार को चुराने का इल्जाम लगाते हैं एवं उसे पिटवाते हैं। माँ बेटा दोनों के बार-बार गिड़गिड़ाने पर वे लोग धार्मिक अनुष्ठान के जरिए सच का पता लगाने के लिए लड़के को मंदिर उठा कर ले जाते हैं। धर्म की आड़ में आसानी से उन लोगों का शोषण करते हैं, "इस लड़के को मंदिर चलकर परीक्षा देनी होगी। फैसला हम नहीं, धर्म करेगा। क्या धर्म पर विश्वास नहीं हैं? परीक्षा में ये सच्चा साबित हुआ तो सबके सामने जानकी वल्लभ जी को क्षमा मांगनी पड़ेगी और अगर यह चोर साबित हुआ तो सजा पाएगा।''[7] सजा का परिणाम क्या होगा इसमें कोई संशय नहीं था।

मार्टिन राम जो वहां के पादरी होने के साथ-साथ नहर के किनारे बसी इस बेहद मैली बस्ती के बच्चों को पढ़ाते एवं स्वास्थ जैसे सुविधा उपलब्ध कराते थे। उन्हें जब यह पता चला कि नोखे के लड़के को जुर्म कुबूल कराने के लिए एक धार्मिक आदिम विधि निभाई जा रही है तो उनका दिल दहल जाता है। धार्मिक विधि जो 'याज्ञवल्क्य' में उद्धृत बृहस्पति के वचन के अनुसार थी जिसे 'दिव्य' कहा जाता है। जिसमें शोध्य को गरम तवे पर बीस मिनट बिठाया

जाता है अगर वह जल जाता है तो वह अपवित्र है। इस सबका विरोध पादरी मार्टिन राम ने किया तो उन्हीं के चर्च पर हमला हुआ और उन्हें देश विरोधी गति-विधियों में शामिल है कहकर देश द्रोही ठहराया गया। मार्टिन राम ने पुलिस की भी मदद लेनी चाही मगर पुलिस उन्हीं पर आरोप-प्रात्यारोप करने लगी। एक अधिकारी बोला, ‘‘आप जानते हैं, यह मामला कितना संवेदनशील है। आखिर यह धर्म का मामला है। किसी दूसरे धर्म में आप दखलंदाजी क्यों करना चाहते हैं?’’

मार्टिन राम आहत हुए, फिर भी उन्होंने तर्क करने की कोशिश की, ‘‘सवाल एक मनुष्य की जिंदगी का है।’’

अधिकारी घूरता हुआ बोला, ‘‘देखिए, मैं तो नहीं चाहता था, पर अब बता ही दूं। हमारे पास कई लोगों ने रिपोर्ट की है कि आप आसपास के गरीब लोगों को जोर-जबर्दस्ती ईसाई बनाते हैं। ईसाई बनाने के लिए उन्हें लालच भी देते हैं।..... लोगों ने यह भी रिपोर्ट की है कि आपका चर्च राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों का अड्डा है’’[8] पुलिस तंत्र को लेकर असगर अली लिखते हैं, ‘‘विभिन्न समुदायों की आबादी के अनुरूप पुलिस में उनके प्रतिनिधित्व की माँग एक आकर्षक नारा भर है जो कि एक अत्यधिक गम्भीर और लाइलाज लगने वाली बीमारी को एक गोली से ठीक करने का दावा करता है। इससे पुलिस बलों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने की बात करना बेमानी है।’’[9]

फादर जो उन गरीब बच्चों की शिक्षा और इलाज के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। फासिस्ट ताकतें उन्हें सन्देह से देखती हैं, उनके चर्च को नुकसान पहुंचाती हैं। देखने वाली बात यह है कि पुलिस भी धर्म के नाम पर एक बच्चे को जिंदा जला देने वाली घटना को संवेदनशील मामला बताकर नजरअंदाज या कन्नी काट लेती है और उल्टा फादर को भी

धमकाती है। कहानी बड़े ही खूबसूरत ढ़ंग से पारवंडी हिंदुओं और पूंजीपति लोगों और पुलिस का पर्दाफाश करती है और सोचने पर मजबूर करती है आखिर धर्म का स्वरूप क्या है?

'युद्ध' कहानी का संबंध सीधे-सीधे तौर पर तो सांप्रदायिकता से नहीं है। लेकिन इस कहानी का संबंध हिंसा और युद्ध के दौरान होनी वाली उस दहशत से है जिसका शिकार एक स्त्री को होना पड़ता है। हार या जीत किसी भी पक्ष की हो लेकिन उस हार या जीत की कीमत एक स्त्री के अपने मान से चुकानी होती है। हारी हुई सेना का सिपाही अपने अफसर से कहता है, "हमें समूचे शहर में सिर्फ चार औरतें मिलीं, जो इस कदर बूढ़ी हो चुकी हैं कि कुत्ता भी उन्हें खा नहीं सकता!'' एक सैनिक ने साहस करके कहा।

"आपका काम हो चुका है, इस औरत को हम चाहते हैं।'' दूसरे ने पीछे से चिल्लाकर कहा।''[10]

दुश्मन को पीछे धकेलते हुए उनके अपनी ओर के सैनिक शहर में आ पहुंचे। विजयी सेना ने भी औरत का वही हाल किया जो पराजित सेना के सैनिकों ने किया "उनमें से एक आदमी दरवाजे की ओर खड़ा हो गया अपनी स्टेनगन लेकर और बाकी जल्दी-जल्दी अचानक, आशा के विपरीत मिल गयी इस औरत पर टूट पड़े, किसी ने धक्का देकर पति को एक ओर धकेल दिया। मलबे के कारण लेटने या बैठने की गुंजाइश नहीं थी। शायद फुरसत भी नहीं थी। देर तक यह गरम नाच होता रहा।"[11]

कहानीकार मुद्राराक्षस ने युद्ध चित्रण बहुत मार्मिक रूप से किया है। कहानी की शुरूआत युद्ध के माहौल से होती है। गांव में सैनिक धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए घरों पर बमबारी करते हुए दहशत फैला रहे थे। पूरे गांव में एक का सा माहौल फैल गया। घर में रहने वाले पति पत्नी युद्ध के इस सारे परिदृश्य को खिड़की से देख रहे थे और पति इंतजार कर रहा था कि सेना आयेगी और शत्रुओं को पराजित कर देगी। लेकिन पत्नी निश्चित होकर बैठी थी। अचानक एक

साथ कई धमाके हुए घर टूटने लगे। इसी बीच शत्रु सैनिकों के जलजले ने घर में प्रवेश किया और औरत को देखकर चिल्लाने लगे। यह लूट का माल है इसे हम लेंगे। सैनिकों का अफसर उन्हें वहां से जाने का हुक्म सुनाकर उस औरत पर झपटा उसे अचानक यह लगा कि कमरे में औरत और यह विजेता अफसर है। औरत ने उसके चहरे पर थूका। पलक झपकाते ही उसने औरत को इस तरह पकड़ा जैसे किसी ने भागती हुई सांपिन को पकड़ लिया हो लेकिन औरत ने अपने दांत उसकी कलाई में धंसा दिये और खुद को बचा लिया। इसके बाद अफसर सैनिक ने अपने आक्रोश को संभालते हुए पति को खाने का इन्तजाम करने का हुक्म दिया और पत्नी जैसे ही बाहर की और भागी सैनिक ने उसे पकड़ लिया "वह एक-एक कर उसके कपड़े इस तरह चीरता गया, जैसे उसकी खाल उतार रहा हो। एक-एक धज्जी उसने चीरकर अलग फेंक दी।''[12]

पति ने अपनी अकर्मण्यता और बेबसी का परिचय देते हुए ना तो उस अफसर को रोका और ना ही कुछ कहा और पत्नी की इज्जत लूटते देखता रहा। अफसर के खाना खाने के थोड़ी देर बाद उसके दर्जनों सैनिक आ गये और उस औरत पर सारे के सारे एक साथ टूट पड़े। "भीड़ में देर तक पता नहीं चला कि औरत कहां है पति चुपचाप एक ओर दीवार से, किसी काक्रोच की तरह चिपका हुआ खड़ा रहा।''[13] उसके बाद फिर लड़ाई शुरू हुई और पहले से ज्यादा बमबारी होने लगी। शत्रु सैनिक हार गये और स्थानीय सेना विजित हुई। लेकिन स्त्री के साथ वही सब दुबारा दोहराया गया बस फर्क इतना था कि इस बार शत्रु सैनिकों की तरफ से आये रिपोर्टरस और स्थानीय सेना की तरफ से आए रिपोर्टरस को एक ही बयान दिया और बयान दोनों ही पक्षों के हित में था।

"औरत ने पूछा – "मैं यह भी कह सकती हूँ कि तुम लोगों ने क्या किया है?''

"नहीं! कतई नही!''

टेपरिकॉर्डर चलने लगा। धीरे-धीरे घूमती चर्खियों के पार देखती हुई औरत बड़ी सावधानी से एक-एक बात, जैसी कही गयी थी, उसी तरह बोलती चली गयी। तोते के तरह।[14]

अंत में उसके पति ने उसका हालचाल पूछा तो उसने उसके मुंह पर जोर से थूक दिया और कहानी का अंत इन पंक्तियों के साथ हो गया कि पत्नी उठकर खड़ी हो गयी। अजीब निगाहों से उसने बाहर की ओर देखा, गोया तीसरी बार धमाके शुरू होने का इंतजार हो!

यह कहानी युद्ध की उस चरम विभित्सा का वर्णन करती है जिसमें भौतिक संपति के साथ मान का भी हरण होता है। मुद्राराक्षस की यह कहानी युद्ध के बाद विभित्सा के उस चहरे को दिखाती है जिसे पढ़कर रूह काँप जाती है कि किस कद्र एक स्त्री का अपमान किया जाता है। जिस स्त्री को सभी धर्म ग्रंथों ने इतना ऊँचा स्थान दिया है उसी स्त्री को पुरूष किस कदर रौंदता है? मनुष्य की बर्बरता को देखते हुए यह कथन उचित लगता है आदमी ज्यादा पाश्विक होता है और पशु ज्यादा मानवीय।

बाबरी मस्जिद-रामजन्मभूमि विवाद लगभग एक दशक तक राजनीति और साहित्य पर छाया रहा। यह विवाद इतना तीखा इसलिए था क्योंकि स्वतंत्रता के बाद पहली बार भारतीय जनता सांप्रदायिक आधार पर बटी। रामजन्म भूमि मन्दिर का निर्माण और बाबरी मस्जिद का गिरना कतई बहुसंख्यक हिन्दुओं की माँग नहीं थी। बाकायदा लिब्रहान रिपोर्ट में यह स्पष्ट उल्लेखित है कि आम जनता को मंदिर के बनने और मस्जिद के ढहने से कोई सरोकार नहीं था। ना ही संघ के नेताओं और ना ही आडवाणी ने अपने भाषणों में कभी संकेत दिया कि उनका इरादा मस्जिद ढहाने का है क्योंकि आम हिन्दू को यह कभी गंवारा नहीं होता।

बाबरी मस्जिद और रामजन्मभूमि विवाद का उद्देश्य मात्र सत्ता और सिर्फ सत्ता पाना था जिसके लिए नेता कुछ भी करने से गुरेज नहीं करता। इस सत्ता की कीमत चाहे बेगुनाह लोगों, निर्दोष पुरुषों, महिलाओं और बच्चों का खून ही क्यों ना हो। रामजन्मभूमि विवाद के

बाद देश में बड़ी-बड़ी सांप्रदायिक घटनाऐं हुई जैसे मुम्बई आतंकवादी हमला, गोधरा कांड, मुजफ्फर नगर दंगा ये सभी मस्जिद ढहाए जाने का परिणाम थे। अक्सर यह देखा गया है कि दंगे या तो चुनाव से पहले या किसी घोटाले के सामने आने पर करवाये जाते है ताकि देश का युवा इन घोटालों के बारे में सोचने के बजाय दंगों के बारे में सोचे, हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई के बारे में सोचे। मुद्राराक्षस की कहानी 'एहसास' भी कुछ ऐसे ही कथानक पर आधारित है। पटकथा 1987 मेरठ दंगों पर आधारित है। जो बोफोर्स कांड का परिणाम थे। जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे उस समय बोफोर्स घोटाला सामने आया। उस समय उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री बीरबादुर सिंह थे, जिन्होंने सत्ता और पार्टी को बचाने के लिए भोली-भाली जनता के बीच दंगे करवाये ताकि जनता का ध्यान इन घोटलों पर जाये ही नहीं। भोली-भाली जनता भी ऐसी जिसमें हमदम साहब जैसे लोग है जो अपने नेताओं पर भरपूर विश्वास करते हैं कि उनके नेता जनता की हिफाज़त करते हैं।

कहानी शुरू होती है मलियान गाँव से जहाँ गाँव के प्रत्येक घर से लोगों को पी.ए.सी द्वारा गाजियाबाद बोर्डर पर ले जाया जा रहा है ताकि उन्हें गोलियों से उड़ा दिया जाये और हिंदू-मुस्लिम दंगे का रूप दे दिया जाये। मरने वालों की संख्या अठहत्तर थी, अठहत्तर नहीं छिहत्तर थी क्योंकि अब्दुल रऊफ जो पंचर लगाता था और हमदम साहब जो शेरों शायरी के लिए मशहूर थे वे लोग जिन्दा बच गये थे। बचे हुये इन दो से पुलिस ने तफशीश की कि गाजियाबाद बॉर्डर पर क्या हुआ। रऊफ ने बताया "हमारे घरों में एक हजारों सिपाही थे पी.ए.सी. के। हमारा सारा सामान सड़क पर फेंक दिया। औरतों, बच्चों को बंदूक के कुंदों से मारने लगे, तब हम बक्सों के ढेर के पीछे से निकल आए सारे मुहल्ले के जितने मर्द थे, बूढ़े जवान किसी को नहीं छोड़ा।.....सबको लाइन से खड़ा कर दिया और तड़ातड़ गोलियां चलाने लगे। साहब, एक-एक को भून दिया, एक-एक को। एक-एक को मार दिया साहब।"[15] सत्ता को बचाने के लिए बोफोर्स से जनता का ध्यान हटाने के लिए दंगा करवाया गया और

उसी दंगे के सिलसिले में पी.ए.सी. के जवानों ने मर्द, बूढ़े, जवान, औरतों, बच्चों किसी को नहीं छोड़ा और गोली चला कर मार दिया। हमदम साहब जैसे लोग जो नेताओं पर भरोसा करते हैं और भरोसा भी इस कदर की मानने का तैयार नहीं की यह काम उनके वजीरे आला बीरबहादुर सिंह और राजीव गांधी की देन है। भरोसा तो उस समय टूटता है जब वह अखबार में यह पढ़ते हैं कि बयान देने वाले रउफ और हमदम पाकिस्तानी जासूस है।

बचे हुए दो लोगों का अस्पताल में इलाज करवाकर बयान लिया गया यह खबर अखबार मे छपी और मुद्दा बनी रही। हमदम साहब जो अपने गांव लौट जाना चाहता था पुलिस ने कर्फ्यू के कारण उसे गांव के बाहर से ही वापस भेज दिया। उसे कुछ गड़बड़ लगा और वह गवर्नर के पास गया। वही गवर्नर जिसको छब्बीस जनवरी को अपनी शेरो शायरी के माध्यम से हमदम साहब ने गदगद् कर दिया था और खुशी से गवर्नर ने हमदम साहब के कंधे पर हाथ रखा था। हमदम गवर्नर को अपनी आपबीती सुना ही रहा था कि गवर्नर ने उनके हाथ में अखबार दिया जिसे पढ़कर उसके होश उड़ गये "जनाब....मैं.....खुदा कसम जनाब, ये सब झूठ है। सफेद झूठ। मैं.....मेरा मतलब खुदा गवाह है, मेरा किसी पाकिस्तानी जासूस से ताल्लुक.....मगर हुजूर सुनिए, क्या आप भी इस बयान पर यकीन करते हैं? मैं तो जनाब, रऊफ को भी खूब जानता हूँ। वो साइकिल का पंचर ठीक नहीं बना पाता, गैरकानूनी असलहा क्या बनाएगा-जनाब.....मैं.....ये तो हद है हुजूर,.....आप तो मुझे जानते है हुजूर।"[16] इसी बीच एक बार फिर गवर्नर ने उसके कंधे पर वही हाथ रखा लेकिन यह गौरव और सम्मान का बखान नहीं कर रहा था, इस वक्त यह हाथ वहीं पड़ा था, जहां जख्म था जिससे हमदम को गहरी पीड़ा का एहसास हुआ और वो पीड़ा उनके कलेजे तक उतर आई।

इस तरह यह कहानी जनता के उस भोंदूपन का समझाती है जो अपने आकाओं पर अटूट विश्वास करती है और सत्ता के ये लोग किस तरह इस विश्वास को झकझोर देते हैं। सत्ता के लिए किसी को भी आतंकवादी घोषित करने में हिचकिचाते नहीं है और धर्मनिरपेक्षता का

भद्दा मजाक बनाते हैं। उचित है कि आतंकवाद एक विशिष्ट राजनैतिक परिस्थिति की राजनैतिक प्रतिक्रिया है और ये विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियाँ बीरबाहदुर सिंह जैसे लोगों द्वारा उत्पन्न की जाती है जो कौमी एकता मानने वाले साधारण मनुष्य को मजबूर करती है। आतंकवादी, सांप्रदायिक और नक्सलवादी हिंसा के लिए हमारी राजनीति किस हद तक जिम्मेदार है यह कहानी उन स्थितियों पर व्यंग्य करती है। सांप्रदायिक, आतंकवादी और नक्सलवादी हिंसा के पीछे के कारण अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु इन सबके बीच जो समानता है वह हैं हिंसा जिसमें निर्दोष लोग अपना जान-माल गँवाते हैं।

मुद्राराक्षस की कहानी 'जले मकान के कैदी' भिन्न-भिन्न सामाजिक समुदायों के बीच विरोधी मतों के संघर्ष से पैदा होने वाले तनावों को चित्रित करती है। बाबरी मस्जिद गिराये जाने से पूरे भारत में एक दहशत का सा माहौल फैल गया था जिसके कारण हिंदू-मुस्लिम एक दूसरे के कट्टर विरोधी हो गए और सत्ता ने इसका भरपूर फायदा उठाया। धर्म संबंधी पार्टियों ने हिंदुत्व का भरपूर प्रचार किया। हिंदू धर्म के नाम पर होने वाली राजनीति हिन्दुत्व कहलाती है। धार्मिक पार्टियां एक दूसरे धर्म के लोगों से तो घृणा सिखाती ही हैं, साथ ही जो लोग इस तरह के विचारों का विरोध करते हैं उन्हें भी डराते धमकाते हैं। लेखक लिखते हैं, "बैठे हुए युवक भी खड़े हो गए। जाते-जाते उन्होंने धमकी भी दी। साफ तो नहीं, पर उन्होंने यह जाहिर किया था कि अगर मैनें अपने विचार नहीं बदले तो वे बम से उड़ा देंगे। उनकी उस धमकी ने नहीं, बल्कि इस बात ने मुझे उलझन में डाल दिया था कि वे कोई भी तर्क सुनने को तैयार नहीं थे। वे अनपढ़ नहीं थे, पर ऐसे लोग अब अक्सर मिल जाते थे, जो दस्तानों में बना ली गई कठपुतलियों की तरह आचरण करते थे। किसी भी तर्क को वे खारिज कर देते थे। किसी भी सवाल का एक ही जवाब उनके पास होता था, 'आप हिंदू-विरोधी हैं।''[17] कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक युवक जिसे आदर्शवादी होना चाहिए उसके दिल में जहर के अलावा कुछ नहीं है।

कहानी का नायक और उसके साथ कुछ लोगों को एक जले मकान में ले जाया गया। उन्हें मुसलमानों के पक्षधर और हिंदू-विरोधी समझकर कुछ हिंदू धर्मांध लोग पकड़ कर एक घर में ले गये। ये घर नायक के दोस्त मीम नसीम का था जिसे आपातकाल के समय में अपमानित कर भगा दिया गया था। ये हिंदू मतांध लोग इन्हें तरह-तरह से अपमानित करते।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने और उनके साथियों ने शहर में एक अजीब सी मुहिम चला रखी थी जिसे वह 'ललकार' कहते थे। "किसी मुसलमान का मकान देखकर वे उसके दरवाजे पर हॉकियाँ पटकते थे, जिससे एक दहशत फैल जाती थी। इन लोगों का निशाना मुसलमान तो होते ही थे, वे हिंदू भी इसी तरह आतंकित किए जाते थे, जिनके बारे में उन्हें पता होता था कि वे 'ललकार' वालों से असहमत हैं। कई बार अपनी घृणा दिखाने के लिए वे इनके दरवाजों पर थूकते थे या खुलेआम पेशाब कर देते थे।"[18]

हिंदू धर्मांध लोग इन्हें हिंदू-विरोधी समझकर इन्हें इस मैकान में ले आये। मकान में जगह उठने बैठने के लिए कम पड़ रही थी। न बिजली थी, न रोशनी और न ही खाने-पीने का इन्तजाम। ये लोग यहाँ पर यातानामय और खौफनाक जीवन बीता रहे थे। इन कैदियों के घरवालों के साथ भी ये धर्मांध लोग बदसलूकी और बुरा व्यवहार करते थे। "छह दिसंबर को बाबरी मस्जिद टूटने के बाद देश में दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा करते वक्त हिंदू धर्मांधों की जो तस्वीर मुझे मिली थी, वह खासी ही डरावनी थी एक जगह तो उन्होंने बाकायदा कुछ औरतों के सारे कपड़े उतार लेने के बाद उन्हें पीटते हुए सड़कों पर दौड़या था और बड़े इत्मीनान से इस दृश्य की फिल्म भी तैयार की थी।"[19] इन लोगों का अत्याचार असहनीय हो गया था। इसी बीच एक रात इन कैदियों को मारने के लिए किसी दूसरी जगह एक पहलवाननुमा व्यक्ति द्वारा ले जाया जा रहा था। इन कैदियों में एक महाशय द्वारा 'धोखा दिया जा रहा हैं' कहते हुए बाकी लोगों को 'खबरदार' करते हुए चिल्लाया, तब विशाल काय आदमी और उसके साथ आये लोगों ने इस आदमी को उछालकर दरवाजे के खुले हिस्से से बाहर फेंक दिया गया। बीच-बीच

में ये क्रूर लोग अश्लील हँसी हँसकर भद्दी टिप्पणियां भी करते "इन हरामियों को तो हम सूँघकर भी जान लेते हैं। सेकूलर साला दूर से भी मुसल्ले की दाढ़ी की तरह महकता है।"[20] कैदी को बाहर फेंक देने के कारण अचानक भीड़ में हलचल होने लगी। एक कैदी ने 'मारो' के नारे के साथ उस पहलवाननुमा आदमी के पेट में तेज धार वाली वस्तु घुसा दी। वह झाड़ियों को कतरने वाली भारी भरकम कैंची थी। पहलवाननुमा आदमी दोनों हाथों से उस कैंची को बाहर खींचने लगा लेकिन असफल रहा। यह देखकर बाहर खड़े मशाल वाले लोग चीखने लगे। इस तरह कहानी के अंत तक राख से काले हुए हर व्यक्ति ने समझ लिया कि निर्णायक लड़ाई शुरू हो चुकी है।

यह कहानी स्पष्ट करती है जिस तरह नसीम का घर जल चुका था और उस पर कालिख जम गयी थी उसी प्रकार आज धर्मांध लोगों का मल जल चुका है और उन्होंने धर्म को गलत परिभाषित करके उस पर कालिख जमा दी है। ये लोग धर्म के नाम पर इतने मदहोश हो चुके हैं कि लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं और समाज का माहौल अस्वस्थ करते हैं। अत्याचारों से परेशान होकर आम आदमी या शांतिप्रिय इंसान भी हिंसा पर उतरने को मजबूर हो जाता है। जिससे स्थिति सुधरने के बजाय और विरोधी हो जाती है। जिसके कारण सांप्रदायिकता के तंतु इतने उलझते जाते है कि उसे सुलझाना मुश्किल हो जाता है।

मुद्राराक्षस की कहानी 'एक बंदर की मौत' बड़ी ही दिलचस्प कहानी लगती है। एक बंदर जो हिंदू-मुस्लिम कुछ नहीं समझता लेकिन हिंदू धर्म में बंदर को हनुमान का प्रतीक माना जाता है तो बंदरों का धर्म भी धर्मांध लोगों के अनुसार हिंदू हुआ। यह कहानी एक बंदर के माध्यम से बड़े दिलचस्प तरीके से हिन्दुत्व पर प्रहार करती है। ये कहानी एक बंदर जिसका नाम पहले जहीनुद्दौला था लेकिन बाद में भगवाधारी लोगों की कृपा से 'नन्हे' हो गया था और बालक मुचडू के आस-पास घूमती है।

मुचड़ू उस औरत का एक मात्र संतान है जिस का पति मर चुका है और सहारा कोई नहीं। वह औरत बूढ़ी, बेहद दुबली पतली है। गली के तीसरे अधगिरे मकान की ऊपरी मंजिल में रहती है चक्की चलाने का काम करती दाल पीसकर अपना जीवन व्यापन करती है। उस बूढ़ी औरत की तरफ उसका बेटा मुचड़ू उदास है। मुचड़ू को माँ पसंद नही थी। इसलिए बाल्यावस्था में खुद कमाकर खाता था। वह औरत रात में गाती थी। गली के एक बच्चे के हादसे के आरोप में वह औरत गाँव छोड़कर चली गई थी। कुछ समय बाद लौट आई। उसके आने-जाने से मुचड़ू पर कोई फर्क नहीं पड़ा। हाँ विकास के नाम पर गली की शक्ल अवश्य बदल गई थी। सबसे बड़ा परिवर्तन कुछ दूर से ही दिखता था। घरों में बिजली का इस्तेमाल ज्यादा था और लोगों ने पानी के अपने नल लगवा लिए थे। गली में जो खंभा था उस पर सरकारी तार पांच थे लेकिन घरों में बस्ती जलाने के लिए जो तारे उन पाँच तारों से जोड़ी गई थी उनसे गुच्छा बहुत भारी हो गया था।

इसी गली में एक अतीक नाम का लड़का रहता था जिसने एक बंदर पाल रखा था जिसका नाम जहीनुद्दौला था। उन दिनों कुछ एक हिंदुओं ने एक आंदोलन चला रखा था जिसे वे 'हिंदू जागरण अभियान' कहते। उनका मानना था हिंदू सो रहे थे और मुसलमान जाग रहे थे इसलिए मजे लूट रहे थे। इस अभियान के दौरान एक भगवादारी लड़के ने अतीक को आवाज लगाकर कहा

"अबे ओ अतीक के बच्चे, बाहर निकल!''....."क्या बात हो गई राजा भैया? मैंने तो आपकी झंड़ी लगा रखी है।''

"अबे, भगवा लगाकार कौन-सा एहसान किया तूने, ऐं?

भगवा नहीं लगाएगा तब क्या पाकिस्तानी झंड़ा लगाएगा? ये बंदर तेरा हैं?'' मक्कू ने पूछा

"क्या नाम रखा है इसका?.....

मैंने इसका नाम जहीनुद्दौला रखा हैं।''.....

तब तक उस 'राजा भैया' ने अतीक का गला पकड़ लिया। तीन-चार भद्दी गालियां देकर अपने साथियों से बोला, "हरामी श्री राम भक्त हनुमान को बंदर बता रहा है। अबे, ये बंदर हैं।''

देखते ही देखते वह थोड़ा-सा पिटा, ज्यादा नहीं। उन लोगों की रूचि पीटने से ज्यादा अपनी बात का वजन सिद्ध करने में थी। सहसा राजा भैया को याद आया, "और हां, ये जहीनुद्दौला क्या नाम हुआ? ये बंदर मुसलमान है?''[21] इस घटना के बाद से अतीक को समझ आया कि यह बंदर मुसलमान नहीं है श्री राम भक्त हनुमान का रूप है तो वह मुसलमान कैसे हो सकता है। उसने इस बंदर का नाम 'नन्हे' रख दिया।

उन दिनों अफवाहों के सहारे एक अभियान चला था जिसमें मूर्तियां दूध पीती थी खासतौर पर गणेश की मूर्ति। ये दूध लाने का काम मुचड्डू करता था। जिस दिन मूर्तियों को दूध पिलाने का काम चल रहा था उस दिन सारे शहर से दूध गायब था। दूध पिलाने के लिए बेहाल लोगों की काफी मदद राजा भैया कर रहे थे। राजा भैया ने इसी दौरान अतीक को दूध ले जाते हुए देखा और कहा तू इस दूध का क्या करेगा। अतीक ने कहा यह दूध 'नन्हे' के लिए है। "कौन नन्हे'' राजा भैया ने कहा। अतीक बोला अपना बंदर नन्हे। इस पर राजा भैया ने खीझकर कहा ये साला बंदरों को दूध पिलायेगा। जो बंदर कल तक हनुमान का रूप था आज उसका दूध बेजान मूर्तियों को पिलाया जा रहा था। लोगों को पीने को दूध चाहे मिले या ना मिले पर मूर्तियों को अवश्य मिलना चाहिए। ये अफवाहें ही हिंसा का कारण होती है और इन्हीं अफवाहों के कारण ही मूर्तियां दूध पीती हैं।

एक दिन गली में बिजली के तार से लटक कर एक बंदर मर चुका था उस बंदर को वहाँ से निकाल कर मुचड्डू रास्ते में एक कपड़े के टुकड़े पर उसे रख कर बैठ गया था और उस बंदर पर आने जाने वाले लोग काफ़ी पैसे डाल रहे थे। उस बंदर को कहीं दूर ले जाकर गाड़ आए थे। राजा भैया ने कीर्तन भी करवाया था और मुचड्डू ने सारे पैसे ले लिये। वह लाश ले जाते वक्त उस लाश के ऊपर फेंके जाने वाले पैसों को भी इकट्ठा कर लेता था। कुछ दिनों बाद एक ओर बंदर वैसे ही मरा। इस बार

मंगलवार होने के कारण क्योंकि इस दिन लोग हनुमान जी की पूजा करते हैं उसे और ज्यादा पैसे मिले। यह सब देख कर अतीक का बंदर चिढ़ने लगा और इससे मुचडू भी चिढ़ गया। दरअसल जो बंदर मरे थे वह स्वयं नहीं मरे थे। उन्हें मारा गया था क्योंकि मुचडू जाने-अनजाने में धर्म की खोखली आस्था को समझ गया था और पैसे कमाने के लिए इससे बेहतर क्या रास्ता हो सकता था। दूसरे बंदरों की ही तरह उसने अतीक के बंदर को भी मारना चाहा लेकिन बंदर के साथ-साथ वह भी तारों के उस जंजाल में फंस गया जिस बिजली के खंबे के तारों के जंजाल से वह बंदरों को मारता था। नन्हे और मुचडू दोनों तारों की आतिशबाजी में तैर गये और फिर चीखते हुए गली में नीचे आ गिरे।

मुद्राराक्षस की यह कहानी धर्म पर अंध आस्था रखने वालों पर जबरदस्त व्यंग्य करती हैं। इस कहानी मे बाल मजदूरी का भी पक्ष दिखता है कैसे एक बच्चा अपना पेट पालने के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल देता है और जान गंवा बैठता है।

विस्थापति और पैशाचिक ऐसी कहानियां है जो सीधे तौर पर तो सांप्रदायिकता से नहीं जुड़ती है लेकिन सांप्रदायिकता के छुपे हुऐ तंतुओं पर प्रहार करती है जो दिन-ब-दिन उलझते जा रहे हैं। पैशाचिक कहानी में एक व्यक्ति जो 'नाई' है लेकिन बड़ा संगीतकार बनना चाहता है लेकिन बहुत से बाधक तत्व है जो उसे 'नाई' से भिन्न कुछ बनता देखना नहीं चाहते। ये तत्व आज भी समाज में मौजूद है जो जनता का उत्थान नहीं चाहते क्योंकि जनता के उत्थान से उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। जिसका वर्णन दूसरे अध्याय में किया गया है किस प्रकार शूद्रों के उत्थान से श्रेष्ठी वर्ग के लोगों को दिक्कत होने लगी और उन्होंने हिन्दुत्व की राजनीति का सहारा लेकर इन लोगों को दबा दिया। हिन्दू हो या मुसलमान या सिख सबने अपने फायदे के लिए इस निम्न जाति का उपयोग किया और धोखा दिया। नायक का यह संवाद पूरी व्यवस्था की कहानी को बयां कर देता है "यह एक ऐसा पिशाच था, जो गुणसूत्र की तरह उनके पिता से उन्हें मिला था। कभी-कभी कोई अभागा ऐसा भी पैदा हो जाता है, जिसे अपने वाल्दैन से नाम, मुंह, आंख, रंग-रूप के ही नहीं, किसी और चीज के अनचाहे गुणसूत्र भी मिल जाते हैं, जैसे किसी रोग के गुणसूत्र। लगभग वैसा ही

गुणसूत्र उन्हें भी मिला था-नाई होने का गुणसूत्र।''[22] इस पिशाच से वह मुक्ति चाहता था लेकिन मुक्त हो नहीं पाता है।

पिता ने उस की शादी कर दी बच्चे भी हो गए। कामेश्वर पंडित की कृपा से उसे एक काम भी मिला। लेकिन काम वही जो गुणसूत्रों से मिला था। नाई का काम। फिर भी उस्ताद बनने की उम्मीद खत्म नहीं हुई। एक मौके पर कामेश्वर ने उसका गाना सुना भी था और तारीफ भी की लेकिन संगीतकार बनने का हौसला ना देकर, हजामत की दुकान के लिए जगह की बात कहकर चले गये। किसी तरह नाई शहर पहुँच गया। संगीत पार्टी में काम करने लगा लेकिन काम ज्यादा दिन जमा नहीं। उस के बाद वह मजदूरी करने लगा। उसी दौरान एक आर्यसमाज के आयोजन में गाने का अवसर मिला और खूब प्रशंसा भी बटोरी लेकिन नाई होने के कारण उसे अवसर नहीं दिया गया और एक बार फिर नाई रूपी पिशाच ने उसका पीछा नही छोड़ा। आज भी ऐसे कई नाई है जो काबलियत रखते हुए भी मात्र अपनी जाति के पिशाच के कारण अवसरों से वंचित है और अपने पारंपरिक काम को करने में मजबूर है जिसका फायदा व्यवस्था भरपूर उठाती है।

मुद्राराक्षस की कहानियां सिर्फ एक पक्ष नहीं लेती हैं। मानवेतर व्यवस्था और विचारधारा की तीखी आलोचना करती हुई इनकी कहानियां आमजनों के पक्ष में खड़ी रहती है। आमजन के लिए तो मुद्राराक्षस सीधे-सीधे समाज के ठेकेदार होने का जो दावा करते हैं उनसे भिड़ने को तैयार रहते थे। समाज में सांप्रदायकिता की समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक समस्या है। मुद्राराक्षस ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया और उन तंतुओं की पड़ताल कि जिसमें प्रत्येक संप्रदाय के श्रेष्ठी वर्ग किस प्रकार स्वार्थ की राजनीति और सत्तालोलुपत्ता के लिए इंसान तो दूर जानवरों (एक बंदर की मौत) तक का धर्म निर्धारित कर देते हैं।

देश के राजनैतिक और धार्मिक श्रेष्ठी वर्ग सांप्रदायिक भाषणबाजियों और अपने हित के लिए किसी को भी आतंकवादी घोषित करने से जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। 'एहसास' कहानी गवर्नर और हमदम सहाब के माध्यम से सत्ता के इस खोखलेपन को दर्शाती है। 'राष्ट्रीय सहारा' में अपने एक लेख 'आस्था से न देखें इतिहास को' में मुद्राराक्षस ने लिखा, "अभी बजरंग दल के एक

नेता ने अपने भाषण मे कहा कि औरंगजेब संस्कृत के किसी ग्रंथ को देखते ही उसे जलवा देता था। दुख होता है कि हिंदी क्षेत्र के इस तरह के नेता अपने देश के इतिहास को नहीं पढ़ते हैं। इतिहास की घटनाओं को नितांत काल्पनिक शायद इसलिए बनाकर देखा जाता है कि तथ्यों को तोड़ मरोड़कर अपने संगठन की राजनीति के लिए इस्तेमाल किया जा सके।''

जिस प्रकार कबीर ने भक्तिकाल के समय में सामाजिक व्यवस्था पर सवाल खड़े किये थे उसी तरह मुद्राराक्षस व्यवस्था से सीधे टक्कर लेते हैं जिसके कारण उनकी अनेक रचनायें सरकार द्वारा जब्त कर ली गई है या उनका बहिष्कार किया। धर्म, जो कि भारत में बड़ा ही संवेदनशील मुद्दा है और जिसका सहारा लेकर राजनीति की जाती है। जाहिर सी बात है जो व्यक्ति तर्क करेगा व्यवस्था के लोग उसका बहिष्कार और उसे नकस्लवादी/आतंकवादी ठहराने से कैसे गुरेज कर सकते हैं।

मजेदार बात है अंग्रेजों को प्रेमचंद की 'सोजेवतन' से अपनी व्यवस्था चरमराती दिखी तो उसे जब्त करवा लिया गया। आज नेताओं, पूंजीपतियों, धर्मांध लोगों को मुद्राराक्षस से खतरा दिखा तो उनकी रचनाओं का बहिष्कार किया। व्यवस्था हर उस व्यक्ति के हाथ को दबा देना चाहती है जो उसकी तरफ उठता है। लेकिन मुद्राराक्षस ने कभी भी इनकी परवाह नहीं की और बेबाकीपन से अपनी कलम जारी रखी। यह अवश्य है कि इस तरह की हरकतों ने उन्हें तोड़ अवश्य दिया था लेकिन झुका नहीं पाई। अपने लेखों के माध्यम से तो मुद्रा जी तर्क करते ही हैं, पोजीशन लेते हैं, एक पक्ष में खड़े होते हैं और हमला बोलते हैं। अपने कथा-साहित्य में भी वही तर्क, पोजीशन लेते हैं लेकिन यहां एक संस्कृति का अपने आप से जूझना है। एक शापग्रस्त सभ्यता का आत्मसंघर्ष भी है उदाहरण के लिए, संघी-बजरंगी किस्म की राजनीति और विचारधारा की तीखी आलोचना इनकी कहानियों में है (जले मकान के कैदी, दिव्य दाह) लेकिन उन्हीं आमजनों में, जिनके पक्ष में मुद्राजी खड़े हैं, इस विचारधारा की स्वीकार्यता उनकी कहानियों को सामाजिक यथार्थ की उन गहरी परतों तक ले जाती है जहाँ सभ्यता-समीक्षा एक अंत: संघर्ष का अपने आप से जूझने का रूप-ग्रहण करती है।

संक्षेप में कहना समीचीन है कि मुद्राराक्षस सांप्रदायिकता की उत्पत्ति और उसके मूल में अलगाववादी शक्तियों, नेताओं की सत्ता के लिए स्वार्थ की राजनीति, आर्थिक असंतुष्टि तथा अवसरवादी शक्तियों को कारण के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी कहानियों को पढ़कर हम समाज के भीतर घटित हो रही विभिन्न स्थितियों की विवेचना कर सकते हैं। वे अपने पात्रों के माध्यम से अफवाहों के प्रकरण फैलाने वाली सांप्रदायिकता और परिस्थितिजन्य उन्माद की ओर पाठकों का ध्यान इंगित करते हैं। उनकी कहानियां कट्टर धार्मिक शक्तियों एवं नेताओं के द्वारा सत्ताकांक्षा के लिए आम जनता को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करने का वर्णन सोचने पर विवश करती हैं कि क्या कोई मनुष्य इतना क्रूर हो सकता है कि धर्म के नाम पर एक छोटे से बच्चे को तेज आँच पर सुलगते तवे पर बैठने को मजबूर करे एवं हमदम साहब जैसे कौमी एकता को मानने वाले साधारण मनुष्य को अपने स्वार्थ के लिए आतंकवादी घोषित करे।

हमारे देश में धर्म के नाम पर जो खून की नदियां बहाई जा रही हैं, यह इस देश का ऐसा नासूर है जिसके कारण भारत का सर हमेशा शर्म से झुका है। सांप्रदायिकता का चित्रण करते हुए लेखक ने इसके निदान के भी संकेत दिए हैं। जिस प्रकार मीम नसीम के घर में कैद लोग ये समझ चुके थे कि निर्णायक लड़ाई उन्हें ही लड़नी है उसी प्रकार सांप्रदायिक ताकतों के विरुद्ध आम जनता को ही खड़ा होना पड़ेगा। हमारा प्रजातंत्र परिपक्व नहीं है और हमें हिंसा, गुंडागर्दी करने वाले सभी तत्वों से कड़ाई से निपटना चाहिए चाहें वे हिंदू हो, मुसलमान हो, सिख हो या इसाई। हिंसा को कतई बर्दाशत नहीं किया जाना चाहिए। यह हमारे प्रजातंत्र की कसौटी होगी। अगर हम प्रजातांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ना चाहते है तो हमें सभी प्रकार की संकुचित और सांप्रदायिक भावनाओं से छुटकारा पाना होगा। धर्म के राजनीतिकरण से हम पहले ही बहुत नुकसान उठा चुके हैं। आखिर हम जले मकान के कैदी की तरह कब चेतेंगे ?

मुद्राराक्षस अपनी कहानियों में मीडिया के खोखलेपन का खुलकर चित्रण करते हैं। मीडिया की अपनी मजबूरियां हो सकती हैं और राजनेताओं के अपने स्वार्थ हो सकते हैं, परन्तु विद्वानों और बुद्धिजीवियों को तो नेताओं और मीडिया की बातों को आँख मूंदकर स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अपने पूर्वाग्रहों से लड़ना चाहिए और सत्य की खोज को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। गांधीजी का जोर तो हमेशा सत्य पर रहा है उन्होंने तो सत्य को ईश्वर तक की उपाधि दे दी थी।

इतिहास इस बात का गवाह है कि धर्म का सहारा लेकर अपने कृत्यों को उचित ठहराने का प्रयास हमेशा से होता रहा है। यही उनकी कहानियों में धर्मांधियों के माध्यम से देखने को मिलता है। किस प्रकार वे याज्ञवल्क्य का सहारा लेकर धर्म के नाम पर अपने कुकृत्य को उचित ठहराते हैं एवं धर्म एवं जाति के आधार पर एक छोटे से बालक का शोषण करतें हैं। मुद्राराक्षस मानते हैं हमारे देश में हिंदुत्व की शक्तियाँ धार्मिक शब्दावली का इस्तेमाल अपने राजनैतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए करती रही हैं ।राममंदिर का मुद्दा और उस मुद्दे को लेकर श्री आडवाणी द्वारा निकली गयी रथयात्रा का उद्देश्य क्या राम के प्रति श्रद्धा का राजनैतिक दुरूपयोग करना नहीं था? मुद्राराक्षस अपनी कहानियों के माध्यम से इस प्रपंच को समझने की समझ देते हैं की आधुनिक प्रजातंत्र में कई तरह के अन्याय होते रहते हैं और इन अन्यायों पर पर्दा डालने के लिए हमारे राजनेता एवं सांप्रदायिक ताकतें धार्मिक भाषणबाजी का उपयोग करने में सिद्धहस्त हैं।

सांप्रदायिकता की समस्या हमारे समाज के मनोविज्ञान को किस प्रकार प्रभावित करती है, इसे जानने एवं समझने में मुद्राराक्षस की कहानियां हमारी मदद करती हैं। अफ़वाहों, भय, असुरक्षा, अविश्वास की जो स्थितियां सांप्रदायिक दंगों के समय हमें देखने को मिलती हैं। उन पर बारीकी से मुद्राराक्षस न केवल अपने समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले नियमित स्तंभों से प्रहार करते हैं, बल्कि वे कहानियों में भी इसे बारीकी से पात्रों के माध्यम से व्याख्यायित करते हैं।

संदर्भ

1. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 88
2. https://www.jansatta.com/rajya/famous-literature-writer-author-mudra-rakshas-died-after-long-time-treatment/106185/Date:13.06.2018
3. मुद्राराक्षस; दस प्रतिनिधि कहानियां; किताबघर प्रकाशन, 4855-56124, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण:2005; भूमिका
4. डॉ. रणजीत; सांप्रदायिकता का जहर; मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2011; पृ.19
5. सिंह, कृष्ण प्रताप सिंह; तर्क, विवेक, विज्ञानबोध और मुद्राराक्षस; बहुवचन (सं. अशोक मिश्र); महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; संस्करण:जनवरी-मार्च, 2017; पृ.25
6. मुद्राराक्षस; मुद्राराक्षस संकलित कहानियां; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इस्टीट्यूशनल एरिया, फेज - ।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070;संस्करण: 2009, पृ.62
7. वही; पृ.61
8. वही; पृ.67
9. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.83
10. मुद्राराक्षस; इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा.लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020, संस्करण: 2008; पृ.53
11. वही; पृ.59
12. वही; पृ.53
13. वही; पृ.54
14. वही; पृ.55
15. मुद्राराक्षस, मुद्राराक्षस संकलित कहानियां; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2009; पृ.34
16. वही; पृ.40

17.वही; पृ.18

18.वही; पृ.16

19.वही; पृ.20

20.वही; पृ.13

21.वही; पृ.44, 45

22.वही; पृ.102